९

देश की विकट समस्या : भूख

जब हम अपने जीवन के सम्पूर्ण पक्षों--अतीत, वर्तमान और भविष्य पर विचार करने लगते हैं, तो हमारे सामने एक अजीब-सादृश्य उभर आता है। हमारा अतीत जितना उज्ज्वल रहा है, वर्तमान उतना ही असंतोषजनक और धूमिल। और, भविष्य? भविष्य के आगे, तो एक प्रकार से सघन अंधकार-ही-अंधकार का साम्राज्य दिखाई पड़ने लगता है। एक विचारक ने सत्य ही कहा है--

"Past is always Glorious
Present is always Insatisfactory
And Future is always in Dark".

"उज्ज्वल सुख कर पूत-पुरातन,
वर्तमान कसमस पीड़ाच्छन्न,
और, भविष्यत् तमसावर्तन।"

हमारा स्वर्णिम अतीत :

हम जैसे-जैसे अपने अतीत के पृष्ठों का अवलोकन करते हैं, एक सुखद गौरव-गरिमा से हमारा अन्तस्तल खिल उठता है। हमारा वह परिमित ऐश्वर्य, वह विपुल वैभव, दूध-सी स्वच्छ लहराती नदियाँ, सुदूर क्षितिज तक फैला दिन-रात गर्जता सागर, आकाश को छूती मीलों लम्बी पर्वत-शृंखलाएँ, जहाँ कहीं-न-कहीं प्रति दिन छहों ऋतुएँ अटखेलियाँ करतीं हैं। हमारा वह सादा सुखमय जीवन, किन्तु उच्च विचार, जिसके बीच से 'ओम्', 'अर्हम्' का प्रणवनाद गूंजा करता था, हमारा वह देवों से भी उत्तम जीवन, जिसकी देवता भी स्पृहा करते थे। बिष्णु-पुराण में यही ध्वनि मुखरित हुई है--

"गायन्ति देवा किल गीतकानि,
धन्यास्तु ते भारत-भूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद-मार्गं -- भूते,
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।" २।३।४.

यह गौरवमय दिव्यनाद जब भी हमारे श्रुतिपथ में झंकृत होता है, हमें क्षण भर को न जाने किस अज्ञात सुखद लोक में उड़ा ले जाता है। हम हंस-के-से स्वप्निल पंखों पर उड़कर स्वर्गिक सुख का उपभोग करने लगते हैं। सचमुच हमारा अतीत कितना सुहाना था, कितना श्रेयष्कर! हम आज भी उसको यादकर गौरव से फूले नहीं समाते! इतिहास कहता है, सबसे पहले हमारे यहाँ ही मानव-सभ्यता का अरुणिम प्रकाश प्राची में फूटा था--

"ऊषा ने हँस अभिनन्दन किया,
और पहनाया हीरक हार!"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहे जैन-धर्म हो, चाहे बौद्ध-धर्म हो, चाहे वैदिक-धर्म हो, चाहे अन्य कोई भी परम्परा—सभी ने हमारे अतीत की बड़ी ही रम्य झाँकी प्रस्तुत की है। वह दिव्यातिदिव्य स्वर हमारा ही स्वर था, जो सब ओर प्रतिध्वनित होकर विश्व के कोने-कोने में जागरण का पावन सन्देश दे सका।

हमारा क्षुधित वर्तमान :

किन्तु, उस अतीत की गाथाओं को दुहराने मात्र से भला अब क्या लाभ? आज तो हमारे सामने, हमारा वर्तमान एक विराट् प्रश्न बनकर खड़ा है। वह समाधान माँग रहा है कि कल्पना की सुषमा को भी मात कर देने वाला हमारा वह भारत आज कहाँ है? क्या आज भी किसी स्वर्ग में देवता इसकी महिमा के गीत गाते हैं? भारतवासियों के सम्बन्ध में क्या आज भी वे वही पुरानी यशस्वी गाथाएँ दुहराते होंगे? आज के भारत को देखकर तो ऐसा लगता है कि वे किसी कोने में बैठकर हजार-हजार आँसू बहाते होंगे और सोचते होंगे—आज का भारत कैसा है? क्या यह वही भारत है, जहाँ अध्यात्म की दिव्य प्राण-शक्ति कभी राम, तो कभी कृष्ण, और कभी बुद्ध, तो कभी महावीर बनकर जिसकी मिट्टी को महिमान्वित करती थी? जहाँ प्रेय श्रेय के चरणों की धूल का तिलक करता था। क्या यह वही भारत है?

अंग्रेजी कवि हेनरी डिरोजियो ने अपने काव्य 'झंगीरा का फकीर' की भूमिका में ठीक ऐसी ही मनःस्थिति में लिखा था—

"My Country: in the days of Glory Past
A beauteous halo circled round thy brow
And worshipped as a deity thou wast:
Where is that glory, where is that reverence now
The eagle pinion is chained down at last
And grovelling in the lowly dust art thou:
Thy minstrel hath no wreath to weave for thee
Save the sad story of they misery."

आज यही सत्य हमारे सामने आ खड़ा है। आज का भारत अत्यन्त गरीब है। सुदूर अतीत नहीं, सतरहवीं शताब्दी के भारत को ही ले लीजिए। उस समय के भारत को देखकर फ्रांसीसी यात्री बरनियर ने क्या कहा था? उसने कहा था—

"यह हिन्दुस्तान एक अथाह गड्ढा है, जिसमें संसार का अधिकांश सोना और चाँदी चारों तरफ से अनेक रास्तों से आ-आकर जमा होता है और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी रास्ता नहीं मिलता।"[1]

किन्तु, लगभग दो सौ वर्षों की दुःसह गुलामी के बाद भारत के उस गड्ढे में ऐसे-ऐसे भयंकर छिद्र बने कि भारत का रूप बिलकुल ही विरूप हो गया। उस दृश्य को देखते आँखें झेंपती हैं, आत्मा कराह उठती है। विलियम डिगबी, सी० आई० ई० एस० पी० के शब्दों में—

"बीसवीं सदी के शुरू में करीब दस करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय भी पेट भर अन्न नहीं मिल पाता......इस अधःपतन की दूसरी मिसाल इस समय किसी सभ्य और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती।"[2]

---

१. भारत में अँग्रेजी राज (द्वितीय खण्ड) सुन्दरलाल,
२. वही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह सोने का देश भारत आज इस हालत में पहुँच चुका है कि जिस ओर दृष्टि डालिए उस ओर ही हाय-हाय, तड़प-चीख और भूख की हृदय-विदारक चित्कार सुनाई देती है। विषमता की दुर्लंघ्य खाई के बीच कीड़े के समान आज का मानव कुलबुला रहा है। एक तरफ काम करने वाले श्रमिक कोल्हू के बैल-से पिसते-पिसते कृश एवं क्षीण होते जा रहे हैं, दूसरी तरफ ऊँची हवेलियों में रहने वाले ऐशो-आराम की जिन्दगी गुजार रहे हैं। एक नव-वधू के लज्जा-वसन बेच कर ब्याज चुकाता है, दूसरा तेल-फुलेलों पर पानी-सा धन बहाकर दंभी जीवन बिताता है। परन्तु, आज के ये धन्ना सेठ भी अन्दर में कहाँ सुखी हैं। शोषण की नींव पर खड़े महलों में दुःख के, पीड़ा के, तृष्णा के कीड़े कुलबुलाते रहते हैं। कुछ और, कुछ और की चाह उन्हें न दिन में हँसने देती है, न रात में सोने देती है। आज का भारत तो अस्थिपंजर का वह कंकाल-बना हुआ है कि जिसे देखकर करुणा को भी करुणा आती है। वह स्वर्ग का योग-क्षेम-कर्ता आज असहाय भिक्षुक बना पथ पर ठोकरें खाता फिरता है—

"वह आता,
दो टूक कलेजे के करता,
पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को,
भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता।
. . . .
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे, कुत्ते भी हैं अड़े हुए।"

यह है आज के हमारे भारत की सच्ची तसवीर! वही यह देश है, जो कभी संसार को अन्न का अक्षय दान देता था। संसार को रोटी और कपड़े का दान देता था। जिसकी धर्म की पावन टेर आज भी सागर की लहरों में सिसक रही है—सर तोड़ती, उठती-गिरती! जिसके स्मृति चिन्ह आज भी जावा, सुमात्रा, लंका आदि देशों में देखने को मिल जाते हैं। जिसकी दी हुई संस्कृति की पावन भेंट संसार को मनुष्यता की सीख देती रही है, क्या इसमें आज भी वह क्षमता है? किन्तु कहाँ? आज तो, कल का दाता, आज का भिक्षुक बना हुआ है। कल का सहायता देने वाला आज सहायता पाने को हाथ पसारे अन्य देशों की ओर अपलक निहार रहा है। 'एगे आया' का व्याख्याता, 'वधसुधैव कुटुम्बकम्' के पावन संदेश का उद्गाता भारत आज स्वयं नोन, तेल, लकड़ी के चक्कर में तबाह हो रहा है।

आज हमारे सामने इतिहास का एक जलता प्रश्न खड़ा है कि हम कैसे रहें? कैसा जीवन अपनाएँ। प्रश्न साधारण नहीं है। अतः उत्तर भी यों ही कोई चलता नहीं दिया जा सकता। आइए, इस पर कुछ चर्चा करें।

हमारा युग-धर्म :

मैं उस आध्यात्मिक-परम्परा को महत्त्व देता हूँ, जिसमें मैंने यह साधुवृत्ति ली है। मैंने आर्हत् धर्म की विचारधारा का गहन अध्ययन किया है। उसमें मुझे बड़ा रस आया है, हार्दिक आनन्द भी मिला है। किन्तु, सवाल यह है कि क्या हम उस महान् विचार-धारा को सिर्फ पढ़कर, समझकर आनन्द लेते रहें, मात्र आदर्श का कल्पनामय सुख ही प्राप्त करते रहें, या यथार्थ को भी पहचानें, युगधर्म की आवाज भी सुनें? भारतवर्ष का,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ काल से यह दुर्भाग्य रहा है कि वह अपने जीवन के आदर्शों को, अपने जीवन की ऊँचाइयों को लेकर, जिन्हें कि कभी पूर्व पुरुषों ने प्राप्त किया था, बड़ी लम्बी-लम्बी उड़ानें भरता रहा है। और, उस लम्बी उड़ान में इतना उड़ता रहा है कि यथार्थ उससे कोसों दूर छूट गया है। वह जीवन की समस्याओं को भुलाकर, उन पर विचार करना तक छोड़कर मरणोत्तर स्वर्ग और मोक्ष की बातें करके अपने अहं की तुष्टि करता रहा है। स्वर्ग और मोक्ष की मोहक आकांक्षा में वह कड़ी-से-कड़ी साधनाएँ तो करता रहा है, परन्तु यथार्थ के ऊपर कभी भूल से भी विचारणा नहीं की। धर्म को यदि हम देखें, तो इसके मुख्य रूप से दो भेद होते हैं—१. शरीर-धर्म और २. आत्म-धर्म—आत्मा का धर्म। इन दोनों का समन्वित रूप ही जीवन का युगधर्म है। सिर्फ आत्मा का धर्म अपनाना भी उतना ही एकांगी है, जितना सिर्फ शरीर का धर्म ही धारण करना। दोनों में तट और तरी का सम्बन्ध है, गुंबद और नींव का सम्बन्ध है। जिस प्रकार बिना तरी के धारा के पार तट की कल्पना कल्पना भर है, उसी प्रकार आत्मा का धर्म, शरीर धर्म के बिना, नींव के बिना भवन-निर्माण से कुछ ज्यादा नहीं जान पड़ता। एक विचारक ने सत्य ही कहा है—

"Sound mind in a sound body"

"नीरुज तन में शुचिमन संधान।
क्षीणता हीनतामय अज्ञान॥"

जीवन का आधार :

मैं समझता हूँ, कोई भी देश स्वप्नों की दुनिया में जीवित नहीं रह सकता। माना, स्वप्न जीवन से अधिक दूर नहीं होता, जीवन में से ही जीवन का स्वप्न फूटता है, परन्तु कोई-कोई स्वप्न दिवास्वप्न भी होता है—ख्याली पुलाव, बेबुनियाद हवाई किला-सा। पक्षी आकाश में उड़ता है, उसे भी आनन्द आता है, दर्शक को भी; किन्तु क्या उसका आकाश में सदा उड़ते रहना सम्भव है? कभी नहीं। आखिर दाना चुगने के लिए तो उसे पृथ्वी पर उतरना ही पड़ेगा! कोई भी संस्कृति और धर्म जीवन की वास्तविकता से दूर, कल्पना की दुनियाँ में आबद्ध नहीं रह सकता। यदि रहे, तो उसीमें घुटकर मर जाए, जीवित न रहे। उसे कल्पना की संकीर्ण परिधि के पार निकलना ही होगा, जहाँ जीवन यथार्थ-आधार की ठोस भूमि पर नानाविध समस्याएँ लिए खड़ा है। उसे इन्हें सुलझाना ही होगा। ऐसा किए बिना हम न तो अपना भला कर सकते हैं, न देश का ही। विश्व कल्याण का स्वप्न तो स्वप्न ही बना रहेगा। मैं कोरे आदर्शवादियों से मिला हूँ और उनसे गम्भीरता से बातें भी की हैं। कहना चाहिए, हमारे विचारों को, हमारी वाणी को कहीं आदर भी मिला है, तो कहीं तिरस्कार भी मिला है। जीवन में कितनी बार कड़वे घूंट पीने पड़े हैं, किन्तु इससे क्या? हमें तो उन सिद्धान्तों व विचारों के पीछे, जो जीवन की समस्याओं का निदान यथार्थवादी दृष्टिकोण से करने का मार्ग दिखाते हैं, कड़वे घूंट पीने के लिए तैयार रहना चाहिए। और, यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि सत्य के लिए लड़ने वालों को सर्वप्रथम सर्वत्र जहर के प्याले ही पीने को मिलते हैं, अमृत की रसधार नहीं। विश्व का कल्याण करने वाला जब तक हलाहल का पान न करेगा, वह कल्याण करेगा कैसे? विष पीये बिना, कोई भी शिव शंकर नहीं बन सकता।

हाँ तो, आज भारतवर्ष की बड़ी पेचीदा स्थिति है। जीवन जब पेचीदा हो जाता है, तो वाणी भी पेचीदा हो जाती है और जीवन उलझा हुआ होता है, तो वाणी भी उलझ जाती है। जीवन का सिद्धान्त साफ नहीं होगा, तो वाणी भी साफ नहीं होगी। अतः हमें समस्याओं को सुलझाना है और तदर्थ वाणी को भी साफ बनाना है। जबतक धर्मगुरु तथा राष्ट्र और समाज के नेता अपनी वाणी को शाब्दिक माया-जाल में से बाहर निकाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं लेंगे और अपने मन को स्पष्ट, निर्मल और साफ नहीं बना लेंगे, तब तक संसार को देने के लिए उनके पास कुछ भी नहीं है।

लोग मरने के बाद स्वर्ग की बातें करते हैं, किन्तु स्वर्ग की बात तो इस जीवन में भी सोचनी चाहिए। जो वर्तमान जीवन में होता है, वही भविष्य में प्राप्त होता है। जो जीते-जी यहाँ जीवन में कुछ नहीं बना है, वह मरने के बाद भी देश को मृत्यु की ओर ही ले जाएगा। वह देश को जीवन की ओर कदापि नहीं ले जा पाएगा।

हम देहात से गुजरते हैं, तो देखते हैं कि बेचारे गरीब ऐसी रोटियाँ, ऐसा अन्न खाते हैं कि शायद आप उसे देखना भी पसंद न करें, हाथ से छुएँ भी नहीं। यही आज भारत की प्रधान समस्या है और इसी को आज सुलझाना है। आप जबतक अपने आपमें बंद रहेंगे, कैसे मालूम पड़ेगा कि संसार कहाँ रह रहा है? किस स्थिति में जीवन गुजार रहा है? आप जैसे मानव-बन्धुओं को ठीक तरह समय पर रोटी मिल रही है कि नहीं? तन ढँकने को कपड़ा मिल रहा है या नहीं?

आज का भारतवर्ष इतना गरीब है कि बीमार व्यक्ति अपने लिए यथोचित दवा भी नहीं जुटा सकता और बीमारी की कमजोर हालत में यदि कुछ दिन आराम लेना चाहता है, तो वह भी नहीं ले सकता! जिसके पास एक दिन के लिए दवा खरीदने को भी पैसा नहीं है, वह आराम किस बूते पर कर सकेगा? इन सब बातों पर आपको गंभीरता से विचार करना है।

पृथ्वी के तीन रत्न :

अन्न की समस्या ऐसी विकट समस्या है कि सारे धर्म-कर्म की विचारधाराएँ और फिलॉसफियाँ उसके नीचे दब जाती हैं। बड़े-से-बड़े त्यागी-तपस्वी भी अन्न के बिना एक दो दिन तो बिता सकते हैं, जोर लगाकर कुछ और ज्यादा दिन भी निकाल देंगे, किन्तु आखिरकार उन्हें भी भिक्षा के लिए पात्र उठाना ही पड़ेगा। एक आचार्य ने कहा है—

> **"पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि, जलमन्नं सुभाषितम्।**
> **मूढ़ैः पाषाणखण्डेषु, रत्नसंज्ञा विधीयते॥"**
> **"भूमण्डल पर तीन रत्न हैं, जल, अन्न, सुभाषित वाणी।**
> **पत्थर के टुकड़ों में करते, रत्न कल्पना पामर प्राणी॥"**

इस पृथ्वी पर तीन ही मुख्य रत्न हैं—अन्न, जल और मीठी बोली। जो मनुष्य पत्थर के टुकड़ों में रत्न की कल्पना कर रहे हैं, आचार्य कहते हैं कि उनसे बढ़ कर पामर प्राणी और कोई नहीं है। जो अन्न, जल तथा मधुर बोली को रत्न के रूप में स्वीकार नहीं करता है, समझ लीजिए, वह जीवन को ही स्वीकार नहीं करता है। सचमुच वह दया का पात्र है।

अन्न : पहली समस्या :

अन्न मनुष्य की सबसे पहली आवश्यकता है। मनुष्य अपने शरीर को, पिण्ड को लिए खड़ा है और इसके लिए सर्वप्रथम अन्न की और फिर कपड़े की आवश्यकता है। इस शरीर को टिकाए रखने के लिए भोजन अनिवार्य है। भोजन की आवश्यकता पूरी हो जाती है, तो धर्म की बड़ी-से-बड़ी साधना भी सध जाती है। हम पुराने इतिहास को देखें और विश्वामित्र आदि की कहानी पढ़ें, तो मालूम होगा कि बारह वर्ष के दुष्काल में वह कहाँ-से-कहाँ पहुँचे और क्या-क्या करने को तैयार हो गए! वे अपने महान् सिद्धान्त से गिर कर कहाँ-कहाँ न भटके! मैंने वह कहानी पढ़ी है और यदि उसे आपके सामने दुहराने लगूं, तो सुनकर आपकी अन्तरात्मा भी तिलमिलाने लगेगी। द्वादशवर्षीय अकाल में बड़े-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़े महात्मा केवल दो रोटियों के लिए इधर-से-उधर भटकने लगते हैं और धर्म-कर्म को भूलने लगते हैं। स्वर्ग और मोक्ष किनारे पड़ जाते हैं और पेट की समस्या के कारण, लोगों पर जैसी गुजरती है, उससे देश की संस्कृति नष्ट हो जाती है और केवल रोटी की फिलॉसफी ही सामने रह जाती है। विश्वामित्र जैसे महर्षि भी चाण्डाल के यहाँ भोजन हेतु पहुँच जाते हैं।

भूख : हमारी ज्वलंत समस्या :

आज आपके देश की दशा कितनी दयनीय हो चुकी है! अखबारों में आए दिन देखते हैं कि अमुक युवक ने आत्महत्या कर ली है, रेलगाड़ी के नीचे कट कर मर गया। किसी ने तालाब में डूब कर अपने प्राण त्याग दिये हैं और पत्र लिख कर छोड़ गया है कि मैं रोटी नहीं पा सका, भूखों मरता रहा, अपने कुटुम्ब को भूखों मरते नहीं देख सका, इस कारण आत्म-हत्या कर रहा हूँ। जिस देश के नौजवान और जिस देश की इठलाती हुई जवानियाँ रोटी के अभाव में ठंडी हो जाती हैं, जहाँ के लोग मर कर ही अपने जीवन की समस्या को हल करने की कोशिश करते हैं, उस देश को क्या कहें? स्वर्गभूमि कहें या नरक भूमि? मैं समझता हूँ, किसी भी देश के लिए इससे बढ़कर कलंक की बात दूसरी नहीं हो सकती। जिस देश का एक भी आदमी भूख के कारण मरता हो और गरीबी से तंग आकर मरने की बात सोचता हो, उस देश के रहने वाले समृद्ध लोगों के ऊपर यह बहुत बड़ा वज्र पाप है। राज्य-शासन भी इस पाप से अछूता नहीं रह सकता।

एक मनुष्य भूखा क्यों मरा? इस प्रश्न पर यदि गम्भीरता के साथ विचार नहीं किया जाएगा और एक व्यक्ति की भूख के कारण की हुई आत्महत्या को राष्ट्र की आत्महत्या न समझा जाएगा, तो समस्या हल नहीं होगी। जो लोग यहाँ बैठे हैं और मजे में जीवन गुजार रहे हैं और जिनकी निगाह अपने सुन्दर महलों की चहारदिवारी एवं महकती पाकशाला से बाहर नहीं जा रही है और जिन्हें देश की हालत पर सोच-विचार करने की फुर्सत नहीं है, वे इस जटिल समस्या को नहीं सुलझा सकते।

आज भुखमरी की समस्या देश के लिए सिर-दर्द हो रही है। इस समस्या की भीषणता जिन्हें देखनी है, उन्हें वहाँ पहुँचना होगा। उस गरीबी में रह कर दो-चार मास व्यतीत करने होंगे! देखना होगा कि किस प्रकार वहाँ की माताएँ और बहिनें रोटियों के लिए अपनी इज्जत बेच रही हैं और अपने दुधमुंहे लालों को, जिन्हें वह स्वर्ण और रत्नों का ढेर पाने पर भी देने को तैयार नहीं हो सकती, दो-चार रुपयों में बेच रही हैं!

इस पेचीदा स्थिति में आपका क्या कर्तव्य है? इस समस्या को सुलझाने में आप क्या योग दे सकते हैं? याद रखिए कि राष्ट्र नामक कोई अलग पिण्ड नहीं है। एक-एक व्यक्ति मिल कर ही समूह और राष्ट्र बनता है। अतएव जब राष्ट्र के कर्तव्य का प्रश्न आता है, तो उसका अर्थ, वास्तव में राष्ट्र के सभी सम्मिलित व्यक्तियों का कर्तव्य ही होता है। राष्ट्र को यदि अपनी कोई समस्या हल करनी है, तो राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को वह समस्या हल करनी है। हाँ तो, विचार कीजिए, आप अन्न की समस्या को हल करने में अपनी ओर से क्या योगदान कर सकते हैं?

समस्या का ठोस निदान :

अभी-अभी जो बातें आपको बतलाई गई हैं, वे अन्न-समस्या को स्थायी रूप से हल करने के लिए हैं। परन्तु इस समय देश की हालत इतनी खतरनाक है कि स्थायी उपायों के साथ-साथ हमें कुछ तात्कालिक उपाय भी काम में लाने पड़ेंगे। मकान में आग लगने पर कुआँ खोदने की प्रतीक्षा नहीं की जाती। उस समय तात्कालिक उपाय बरतने पड़ते हैं। तो अन्न-समस्या को सुलझाने या उसकी भयंकरता को कुछ हल्का बनाने के लिए आपको तत्काल क्या करना है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो लोग शहर में रह रहे हैं, वे सबसे पहले तो दावतें देना छोड़ दें। विवाह-शादी आदि के अवसरों पर जो दावतें दी जाती हैं, उनमें काफी अन्न बर्बाद होता है। दावत, अपने साथियों के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने का एक तरीका है। जहाँ तक प्रेम-प्रदर्शन की भावना का प्रश्न है, मैं उस भावना का अनादर नहीं करता हूँ, किन्तु इस भावना को व्यक्त करने के तरीके देश और काल की स्थिति के अनुरूप ही होने चाहिए। भारत में दावतें किस स्थिति में आईं? एक समय था जबकि यहाँ अन्न के भण्डार भरे थे। खुद खाएँ और संसार को खिलाएँ, तो भी अन्न समाप्त होने वाला नहीं था। पाँच-पचास की दावत कर देना तो कोई बात ही नहीं थी! किन्तु आज वह हालत नहीं रही है। देश दाने-दाने के लिए मुंहताज है। ऐसी स्थिति में दावत देना देश के प्रति द्रोह है, एक राष्ट्रीय पाप है। एक ओर लोग भूख से तड़प-तड़प कर मर रहे हों और दूसरी ओर हलवा-पूड़ी, कचौरियाँ और मिठाइयाँ जबर्दस्ती गले में ठूंसी जा रही हों—इसे आप क्या कहते हैं? इसमें करुणा है? दया है? सहानुभूति है? अजी, मनुष्यता भी है या नहीं? यह तो विचार करो।

मैंने सुना है, मारवाड़ में मनुहार बहुत होती है। थाली में पर्याप्त भोजन रख दिया हो, बाद में और अधिक लेने के लिए साग्रह यदि पूछा नहीं गया, तो जीमने वालों की त्योरियाँ चढ़ जाती हैं। मनुहार का मतलब ही यह है कि दबादब-दबादब थाली में डाले जाना और इतना डाले जाना कि खाया भी न जा सके, और व्यर्थ ही खाद्य-पदार्थ अधिकांश बर्बाद हो जाए! जूठन न छोड़ी गई, तो न खाने वाले की कुछ शान है, और न खिलाने वाले की।

उत्तर प्रदेश के मेरठ और सहारनपुर जिलों से सूचना मिली है कि वहाँ के वैश्यों ने, जिनका ध्यान इस समस्या की ओर गया, बहुत बड़ी पंचायत जोड़ी है और यह निश्चय किया है कि विवाह में इक्कीस आदमियों से ज्यादा की व्यवस्था नहीं की जाएगी। उन्होंने स्वयं यह प्रण किया है और गाँव-गाँव में यही आवाज पहुँचा रहे हैं तथा इसके पालन कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। क्या ऐसा करने से उनकी इज्जत बर्बाद हो जाएगी? नहीं, उनकी इज्जत में चार चाँद और लग जाएँगे। आपकी तरह वे भी खूब अच्छा खिला सकते हैं और चोर-बाजार से खरीद कर हजारों आदमियों को खिलाने की क्षमता रखते हैं। किन्तु उन्होंने सोचा, इस तरह तो हम मानव जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। यह खिलवाड़ अमानुषिक है। हमें इसे जल्द-से-जल्द बन्द कर देना चाहिए।

हाँ तो, सर्व-प्रथम बात यह है—बड़ी-बड़ी दावतों का यह जो दुर्नाम सिलसिला चल रहा है, शीघ्र ही बन्द हो जाना चाहिए। विवाह-शादी या धार्मिक-उत्सवों के नाम पर, जो दावतें चल रही हैं, कोई भी विवेकशील आदमी उन्हें आदर की दृष्टि से देख नहीं सकता। यदि आप सच्चा आदर पाना चाहते हैं, तो आपको यह संकल्प कर लेना है—आज से हम अपने देश के हित में दावतें बन्द करते हैं। जब देश में अन्न की बहुतायत होगी, तो भले ही उत्सव मनाएँगे, खाएँगे और खिलाएँगे।

दूसरी बात है, जूठन छोड़ने की। भारतवासी जब खाने बैठते हैं, तो वे खाने की मर्यादा का बिल्कुल ही विचार नहीं करते। पहले अधिक-से-अधिक लेते हैं और फिर जूठन छोड़ते हैं।

किन्तु, भारत का कभी आदर्श था कि जूठन छोड़ना पाप है। जो कुछ लेना है, मर्यादा से लो, आवश्यकता से अधिक मत लो। और जो कुछ लिया है, उसे जूठा न छोड़ो। जो लोग जूठन छोड़ते हैं, वे अन्न का अपमान करते हैं। उपनिषद् का आदेश है—**'अन्नं न निन्द्यात।'**

जो अन्न को ठुकराता है, अन्न का अपमान करता है, उसका भी अपमान अवश्यंभावी है। अन्न का इस प्रकार अपमान करने वाला भले ही कोई व्यक्ति हो, परिवार हो, समाज हो या राष्ट्र हो, एक दिन वह अवश्य ही तिरस्कृत होता है।

एक वैदिक ऋषि ने महत्त्वपूर्ण उद्घोष किया है—**"अन्नं वै प्राणाः।"**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्न मानव के प्राण हैं। अन्न का तिरस्कार करना, अपने जीवनाधार प्राणों का तिरस्कार करना है। इस प्रकार जूठन छोड़ना भारतवर्ष में सदा से अपराध समझा जाता रहा है। हमारे प्राचीन महर्षियों ने तो उसे एक बहुत बड़ा पाप कहा है।

आमतौर पर जूठन छोड़ना एक मामूली बात समझी जाती है। लोग सोचते हैं कि आधी छटाँक जूठन छोड़ दी, तो क्या हो गया? इतने अन्न से क्या बनने-बिगड़ने वाला है? परन्तु यदि इस आधी छटाँक का हिसाब लगाने बैठें, तो आँखें खुल जाएँगी। इस रूप में एक परिवार का हिसाब लगाएँ तो साल भर में इक्यानवे पौंड अनाज देश की नालियों में बह जाता है। अगर ऐसे पाँच हजार परिवारों में जूठन के रूप में छोड़े जाने वाले अन्न को बाँट दिया जाए, तो बारह सौ आदमियों को राशन मिल सकता है।

यह विषय इतना सीधा-सा है कि उसे समझने के लिए वेद और पुराण के पन्ने पलटने की आवश्यकता नहीं है। आज के युग का तकाजा है कि थाली में जूठन के रूप में कुछ भी न छोड़ा जाए। न जरूरत से ज्यादा लिया ही जाए और न जबरदस्ती परोसा ही जाए। यही नहीं, जो जरूरत से ज्यादा देने-लेने वाले हैं, उनका खुलकर विरोध किया जाए और उन्हें सभ्य समाज में निंदित किया जाए।

ऐसा करने में न तो किसी को कुछ त्याग ही करना पड़ता है और न किसी को कोई कठिनाई ही उठानी पड़ती है। यही नहीं, बल्कि सब दृष्टियों से—स्वास्थ्य की दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से और सांस्कृतिक दृष्टि से—लाभ ही लाभ है। ऐसी स्थिति में आप क्यों न यह संकल्प कर लें कि हमें जूठन नहीं छोड़नी है और जितना खाना है, उससे ज्यादा नहीं लेना है। अगर आपने ऐसा किया, तो अनायास ही करोड़ों मन अन्न बच सकता है। उस हालत में आपका ध्यान अन्न के महत्त्व की ओर सहज रूप से आकर्षित होगा और अन्न की समस्या को सुलझाने की सूझ-बूझ भी आपको स्वतः प्राप्त हो जाएगी।

आज राशन पर तो नियन्त्रण हो रहा है, किन्तु खाने पर कोई नियन्त्रण नहीं है। जब आप खाने बैठते हैं, तो सरकार आपका हाथ नहीं पकड़ती। वह यह नहीं कहती कि इतना खाओ और इससे ज्यादा न खाओ। मैं नहीं चाहता कि ऐसा नियन्त्रण आपके ऊपर लादा जाए। परन्तु मालूम होना चाहिए कि आप थाली में डालकर ही अन्न को वर्बाद नहीं करते, बल्कि पेट में डालकर भी बर्बाद करते हैं। इसके लिए आचार्य बिनोबा ने ठीक ही कहा है कि—'जो लोग भूख से—पेट से ज्यादा खाते हैं, वे चोरी करते हैं।' चोरी, अपने समाज की है, अपने देश की है। अपने शरीर को ठीक रूप में बनाए रखने के लिए जितने परिमाण में भोजन की आवश्यकता है, अनेक लोग प्रायः उससे बहुत अधिक खा जाते हैं। आवश्यकता से अधिक खाए गए भोज्य-पदार्थों का ठीक तरह रस नहीं बन पाता और इस प्रकार वह भोजन व्यर्थ जाता है। ठीक तरह चबाया जाए और इतना चबाया जाए कि भोजन लार में मिलकर एक रस हो जाए, तो ऐसा करने से मौजूदा भोजन से आधा भोजन भी पर्याप्त हो सकता है। अल्प भोजन का प्रयोग करने वालों का यह अनुभूत अभिमत है—अगर इस तरह अल्प भोजन करना आरम्भ कर दें, तो आपका स्वास्थ्य भी अच्छा बन सकता है और अन्न की भी बहुत बड़ी बचत हो सकती है।

उपवास का महत्त्व :

अन्न की समस्या के सिलसिले में उपवास का महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी हमारे सामने है। भारत में सदैव उपवास का महत्त्व स्वीकार किया गया है। खासतौर से जैन-परम्परा में तो उसकी बड़ी महिमा है। आज भी बहुत-से भाई-बहन उपवास किया करते हैं। प्राचीन काल के जैन महर्षि लम्बे-लम्बे उपवास किया करते थे। आज भी महीने में कुछ दिन ऐसे आते हैं, जो उपवास में ही व्यतीत किए जाते हैं।

वैदिक-परम्परा में भी उपवास का महत्त्व कम नहीं है। इस परम्परा में, जैसा कि मैंने पढ़ा है, वर्ष के तीन सौ साठ दिनों में ज्यादा दिन उपवास के ही पड़ते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार जब देश में अन्न की प्रचुरता थी और उपभोक्ताओं के पास आवश्यकता से अधिक परिमाण में अन्न मौजूद था, तब भी भारतवर्ष में उपवास किए जाते थे, तो आज की स्थिति में यदि उपवास आवश्यक हो, तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? किन्तु आप हैं, जो गोदाम की तरह रोज-रोज पेट को अन्न से भरते जा रहे हैं! जड़ मशीन को भी सप्ताह में एक दिन आराम दिया जाता है, परन्तु, आप अपनी होजिरी को एक दिन भी आराम नहीं देते। निरन्तर पचाने की क्रिया के बोझ से दबे रहने से वह निर्बल एवं रुग्न हो जाती है। आपकी पाचनशक्ति बिगड़ जाती है, तब आप डाक्टरों की शरण लेते हैं और पाचनशक्ति बढ़ाने की दवाइयाँ तलाश करते फिरते हैं! मतलब यह है कि आवश्यकता से अधिक खा रहे हैं, बीमार पड़ रहे हैं, और फिर भी अधिक खाने की इच्छा रख रहे हैं। एक तरफ तो करोड़ों को जीवन-निर्वाह के लिए भी खाना नहीं मिल रहा है, देश के हजारों-लाखों आदमी भूख से तड़प-तड़प कर मर रहे हैं और दूसरी तरफ लोग अनाप-शनाप खाये जा रहे हैं और भूख को और अधिक उत्तेजना देने के लिए दवाइयाँ तलाश कर रहे हैं!

इस अवस्था में उपवास करना एक ओर धर्मलाभ है, तो दूसरी ओर लोकलाभ भी है। देश की भी सेवा है और आध्यात्मिक-साधना भी है। जीवन और देश की राह में जो खंदक पड़ गई है, उसे पाटने के लिए उपवास एक महत्त्वपूर्ण साधन है। उपवास करने से हानि तो कुछ भी नहीं, लाभ-ही-लाभ है। शरीर को लाभ, आत्मा को लाभ और देश को लाभ, इस प्रकार इस लोक के साथ-ही-साथ परलोक का भी लाभ है।

हाँ, एक बात ध्यान में अवश्य रखनी चाहिए। जो लोग उपवास करते हैं, वे अपने राशन का परित्याग कर दें। यही नहीं कि इधर उपवास किया और उधर राशन भी जारी रखा। एक सज्जन ने अठाई की और आठ दिन तक कुछ भी नहीं खाया। वह मुझसे मिले तो मैंने कहा—"तुमने यह बहुत बड़ा काम किया है, किन्तु यह बताओ कि आठ दिन का राशन कहाँ है? उसका भी कुछ हिसाब-किताब है?" उसका हिसाब-किताब यही था कि वह ज्यों-का-त्यों आ रहा था और घर में जमा हो रहा था। यह पद्धति ठीक नहीं है। उपवास करने वालों को अपने आपमें प्रामाणिक और ईमानदार बनना चाहिए। अतः जब वे उपवास करें तो उन्हें कहना चाहिए कि आज हमको अन्न नहीं लाना है। मैंने उपवास किया है, तो मैं आज अन्न कैसे ला सकता हूँ?

वास्तविक दृष्टि से देखा जाए, तो जो व्यक्ति अन्न नहीं खा रहा है, उसका इस तरह अन्न संग्रह करना चोरी है। मेरे इस कथन में कटुता हो सकती है, परन्तु सच्चाई है। अतएव उपवास करने वालों को इस चोरी से बचना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि प्रामाणिकता के साथ अगर उपवास किया जाए, तो देश का काफी अन्न बच सकता है और भारत की खाद्य समस्या के हल करने में बड़ा भारी सहयोग मिल सकता है। सप्ताह में या पक्ष में एक दिन भोजन न करने से कोई मर नहीं सकता, उलटा मरने वाले का जीवन बच सकता है! इससे आत्मा को भी बल मिलता है, मन को भी बल मिलता है और आध्यात्मिक चेतना भी जागृत होती है। इस प्रकार आपके एक दिन का भोजन छोड़ देने से लाखों लोगों को खाना मिल सकता है।

गो-पालन :

किसी समय भारत में इतना दूध था कि लोगों ने स्वयं पिया, दूसरों को पिलाया, अपने पड़ोसियों को बाँटा! आवश्यकता हेतु कोई आदमी दूध के लिए आया और उसे दूध न दिया, तो किसी युग में यह एक पाप माना जाता था। भारत के वे दिन कैसे महनीय थे कि किसी ने पानी माँगा, तो उसे दूध पिलाया गया। विदेशियों की कलमों से भारत की यह प्रशस्ति लिखी गई है कि भारत में किसी दरवाजे पर आकर यदि कोई पानी मांगता है, तो उसे दूध मिलता है! एक युग था, जब यहाँ दूध की नदियाँ बहती थीं!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु, आज ? आज तो यह स्थिति है कि किसी बीमार व्यक्ति को भी दूध मिलना मुश्किल हो जाता है ! आज दूध के लिए पैसे देने पर भी दूध के बदले पानी ही पीने को मिलता है। और, वह पानी भी दूषित होता है, जो दूध के नाम से देश के स्वास्थ्य को नष्ट करता है।

गायों के सम्बन्ध में बात चलती है, तो हिन्दू कहता है—"वाह ! गाय हमारी माता है ! गाय में तेतीस कोटि देवताओं का वास है ! गाय के सिवा हिन्दू-धर्म में और है ही क्या ?"

और जैन अभिमान के साथ कहता है—"देखो हमारे पूर्वजों को, एक-एक ने हजारों-हजारों और लाखों-लाखों गायें पाली थीं !"

इस प्रकार, क्या वैदिक और क्या जैन—सभी अपने वेदों, पुराणों और शास्त्रों की दुहाइयाँ देने लगते हैं। किन्तु जब उनसे पूछते हैं—तुम स्वयं कितनी गायें पालते हो, तो दाँत निपोर कर रह जाते हैं ! कोई उनसे कहे कि तुम्हारे पूर्वज गायें पालते थे, तो उससे आज तुम्हें क्या लाभ है ?

जिस देश में गाय का असीम और असाधारण महत्त्व माना गया, जिस देश ने गाय की सेवा को धार्मिक रूप तक प्रदान कर दिया, जिस देश के एक-एक गृहस्थ ने हजारों-लाखों गायों का संरक्षण और पालन-पोषण किया और जिस देश के अन्यतम महापुरुष कृष्ण ने अपने जीवन-व्यवहार के द्वारा गोपालन की महत्त्वपूर्ण परम्परा स्थापित की, जिस देश की संस्कृति ने गायों के सम्बन्ध में उच्च-से-उच्च और पावन-से-पावन भावनाएँ जोड़ीं, वह देश आज अपनी संस्कृति को, अपने धर्म को और अपनी भावना को भूलकर इतनी दयनीय दशा को प्राप्त हो गया है कि वह यथावसर बीमार बच्चों को भी दूध नहीं पिला सकता ! शुद्ध दूध के लिए गोपालन नहीं कर सकता।

दूसरी ओर अमेरिका है, जिसे कुछ लोग म्लेच्छ देश तक कह देते हैं और उसके प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं ! आज उसी अमेरिका में प्राप्त होने वाले दूध का यह हिसाब है, कि वहाँ एक दिन में इतना दूध होता है कि तीन हजार मील लम्बी, चालीस फुट चौड़ी और तीन फुट गहरी नदी दूध से पाटी जा सकती है !

हमारे सामने यह बड़ा ही करुण प्रश्न उपस्थित है कि हमारा देश कहाँ-से-कहाँ चला गया है ! यह देवों का देश आज किस दशा में पहुँच गया है ! देश की इस दयनीय दशा को दूर करके यदि समस्या को हल करना है, तो उसे अपनी जन-कल्याणी संस्कृति और धर्म से अनुप्राणित करना होगा। इन्सान जब भूखा मरता है, तो यह मत समझिए कि वह भूखा रह कर यों ही मर जाता है। उसके मन में घृणा और वैर होता है; और जब ऐसी हालत में मरता है, तो देश के निवासियों के प्रति घृणा और वैर लेकर ही जाता है ! वह समाज और राष्ट्र के प्रति एक कुत्सित भावना लेकर परलोक के लिए प्रयाण करता है। और खेद है कि हमारा देश आज हजारों मनुष्यों को इसी रूप में विदाई देता है ! किन्तु प्राचीन समय में ऐसी बात नहीं थी। भारत ने मरने वालों को प्रेम और स्नेह दिया है और उनसे प्रेम और स्नेह ही लिया है। उनसे द्वेष और अभिशाप नहीं लिया था !

आप चाहते हैं कि भारत से और सारे विश्व से चोरी और झूठ आदि पाप कम हो जाएँ। किन्तु भूख की समस्या को सन्तोषजनक रूप में हल किए बिना यह पाप किस प्रकार दूर किए जा सकते हैं ? आज किसी व्यसन से प्रेरित होकर और केवल चोरी करने के अभिप्राय से चोरी करने वाले उतने नहीं मिलेंगे, जितने अपनी और अपनी पत्नी तथा बच्चों की भूख से प्रेरित होकर, सब ओर से निरुपाय होकर, चोरी करने वाले मिलेंगे। उन्हें और उनके परिवार को भूखा रख कर आप उन्हें चोरी करने से कैसे रोक सकते हैं ? धर्म-शास्त्र का उपदेश वहाँ कारगर नहीं हो सकता। नीति की लम्बी-चौड़ी बातें उन्हें पाप से रोकने में समर्थ नहीं हैं। नीतिकार ने तो साफ-साफ कह दिया है—

> **"बुभुक्षितः किं न करोति पापम् ?**
> **क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति ॥"**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूखा क्या नहीं कर गुजरता ? वह झूठ बोलता है, चोरी करता है, हत्या कर बैठता है, दुनिया भर के जाल, फरेब और मक्कारियाँ भी वह कर सकता है।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि भूख की समस्या का धर्म के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है और इस समस्या के समाधान पर ही धर्म का उत्थान निर्भर है।

अहिंसा के देश में :

आप जानते हैं कि भारत में आज क्या हो रहा है ? जैन तो अहिंसा के उपासक रहे ही हैं, वैष्णव भी अहिंसा के बहुत बड़े पुजारी रहे हैं, किन्तु उन्हीं के देश में, हजारों-लाखों रुपयों की लागत से बड़े-बड़े तालाबों में मछलियों के उत्पादन का और उन्हें पकड़ने का काम शुरू हो रहा है। यही नहीं, धार्मिक स्थानों के तालाबों में भी मछलियाँ उत्पन्न करने की कोशिश की जा रही है ! यह सब देखकर मैं सोचता हूँ कि आज भारत कहाँ जा रहा है ! आज यहाँ हिंसा की जड़ जम रही है और हिंसा का खुला मार्ग खोला जा रहा है।

अगर देश की अन्न समस्या हल नहीं की गई और अन्न के विशाल संग्रह काले बाजार में बेचे जाते रहे, तो उसका एकमात्र परिणाम यही होगा कि मांसाहार बढ़ जाएगा। अहिंसक शाकाहारी घरों में भी मांस-मछली का प्रवेश हो जाएगा, हिंसा का ताण्डव होने लगेगा और भगवान् महावीर और बुद्ध की यह भूमि रक्त से रंजित हो जाएगी। इस महापाप के प्रत्यक्ष नहीं, तो परोक्ष भागीदार वे लोग भी बनेंगे, जिन्होंने अन्न का अनुचित संग्रह किया है, अपव्यय किया है और चोर बाजारी की है ! दुर्भाग्य से देश में यदि एकबार माँसाहार की जड़ जम गई, तो उसका उखाड़ना बड़ा कठिन हो जाएगा। यद्यपि कालान्तर में सुभिक्ष होने पर भरपूर अन्न पैदा हो जाएगा, अन्न की कुछ भी कमी न रहेगी, फिर भी माँसाहार कम नहीं होगा ! माँस का चस्का बुरा होता है और लग जाने पर उसका छूटना सहज नहीं है। अतएव दीर्घदर्शिता का तकाजा यही है कि पानी आने से पहले पाल बाँध ली जाए, बुराई पैदा होने से पहले ही उसे रोक दिया जाए।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org